IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अज्ञेय के निबंध : एक विवेचन

डॉ0 अनिल कुमार
पता – भवदेपुर (अम्बेदकर नगर), वार्ड नं0 –12
पोस्ट – भवदेपुर गोट, थाना – रीगा
जिला – सीतामढ़ी(बिहार)
पिन कोड–843302

अज्ञेय के लिए निबंध लिखना अपने सृजन–कर्म की चिन्ताओं को सुलझाना उतना नहीं है जितना कि समय, समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, दर्शन के बदले हुए परिप्रेक्ष्य में उन पर नये सिरे से विचार करना। साहित्यकार होने के साथ वह पत्रकार, संपादक, सभा–गोष्ठी के संवाद–यात्रा–शिविरों के आयोजक थे। हिन्दी के इस विवाद–संवाद नायक के पास पके हुए विचारों के अनुभव हैं, अवधारणाओं से उपजे संदेह हैं और देश–विदेश की विचारधाराओं–आंदोलनों से कमाये हुए सत्य हैं। इन्हीं विश्वासों, संशयों, अवधारणाओं, बहसों, प्रभावों–प्रेरणाओं को उन्होंने अपने निबंधों में स्थान दिया है। उनके वे निबंध सभी पूर्व निर्मित ढाँचे को ध्वस्त करते हैं, नया प्रयोग करते हैं।

निबंधकार अज्ञेय निरंतर भाषा, साहित्य, कला, मिथक, संस्कृति–सभ्यता और गुलामी की औपनिवेशिक मानसिकता को लेकर बेचैन रहे हैं। पश्चिम की नकल में पागल भारत उन्हें कष्ट देता है। वह अपने निबंधों में स्वाधीनता, स्वाधीन व्यक्ति, स्वाधीन समाज, स्वाधीन–संस्कृति, स्वाधीन देश और स्वाधीन मूल्य–दृष्टि पर निरंतर विचार करते रहे हैं। स्मृति का सर्जनात्मक उपयोग करते हुए उन्होंने जयशंकर प्रसाद, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और गोविन्द चन्द्र पाण्डेय की चिन्तन–परंपरा को आगे बढ़ाया है।

हिन्दी निबंध–परंपरा को नये चिन्तन से नया रूप देने वाले निबंधकारों में अज्ञेय एक अविस्मरणीय नाम है। उनके निबंध–संग्रह 'त्रिशंकु' को पढ़ते ही यह ध्यान में बरबस आ जाता है कि यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध के विषय में बड़ी सटीक विचारोक्ति की है कि भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है। अज्ञेय जैसा बहुश्रुत प्रवीण–लेखक निबंध के क्राफ्ट की तमाम जड़ताओं को ध्वस्त करते हुए उसका एक नया प्रयोगशील साँचा और ढ़ाँचा निर्मित करता है। 'नये रचना–कर्म के जटिल संकट उसकी बौद्धिकता को चुनौती देते हैं और वे निबंध की धारा–तरंग–विक्षेप की रीति से बचते हुए निबंध–बुद्धि की मुक्तावस्था की ओर प्रवृत हो जाते हैं।'[1] इस विचारपरक निबंध–विधान में हृदय–पक्ष की उपेक्षा नहीं है बल्कि हृदय–बुद्धि का सामंजस्य एक नये सौन्दर्य की सृष्टि करता है। वहाँ निबंधकार अज्ञेय के व्यक्तित्व की मौलिकता पाठक का ध्यान बरबस आकृष्ट करती है। विचारों की श्रृंखला का तेजोदीप्त प्रकाश लेकर जब 'त्रिशंकु' (1945) के निबंध सामने आये थे तो प्रबुद्ध पाठक वर्ग विस्मय–विमुग्ध हो गया था। आज भी 'हिन्दी निबंध–परंपरा में 'त्रिशंकु' के निबंधों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक महत्त्व भूलने के विरूद्ध है।'[2] अज्ञेय के विरोधी 'त्रिशंकु' के निबंधों की जितनी उपेक्षा करते रहे हैं–उतना ही समय–साहित्य–चिन्तन ने ऐसा पलटा खाया है कि इन निबंधों का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है।

अज्ञेय कवि–कर्म के क्षेत्र में ही नयी राहों के अन्वेषी नहीं हैं, वह निबंध के क्षेत्र में भी नयी राहों के अन्वेषी हैं। विद्रोही ऐसे रचनात्मक हैं कि अपने अलीकी गहन चिन्तन विश्लेषण के संबंध–सूत्रों की अन्तर्योजना में रूढ़ि या परंपरा को, परंपरा की ऐतिहासिक चेतना को नया अर्थ–संदर्भ देने में समर्थ हैं। उनकी विद्रोही मनोभूमिका ऐसी है कि 'उनका रचना–मानस नये–नये अंतःसूत्रों का अन्तःपाठ करता रहता है।'[3] आचार्य शुक्ल के निबंधों का यह गुण अज्ञेय के निबंध चिन्तन के अवचेतन में नयी–नयी छवियों–स्थितियों–प्रकरणों, घटनाओं की स्मृतियों से रचनात्मक रूप धारण करके आया है। अचानक पाठक में अज्ञेय को पढ़ते गुनते हुए यह आचार्य शुक्ल का कथन कौंध जाता है कि 'ये सम्बन्ध सूत्र एक दूसरे नथे हुए, पत्रों के भीतर की नसों के समान, चारों ओर एक जाल के रूप में फैले हैं। तत्त्व चिन्तक या दार्शनिक केवल अपने व्यापक सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए उपयोगी कुछ सम्बन्ध–सूत्रों को पकड़कर किसी ओर सीधा चलता है और बीच में कहीं फँसता है। पर निबंध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर–उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है। अर्थ–सम्बन्ध सूत्रों की टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न–भिन्न लेखकों का

दृष्टिपथ निर्दिष्ट करती हैं। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। इसी का नाम है एक ही बात को भिन्न–भिन्न दृष्टियों से देखना।'[4] दृष्टियों की इसी भिन्नता के कारण पाठ या टेक्स्ट का हर पाठक अर्थ निष्पन्न करता है। इस तरह 'पाठक ही लेखक के पाठ में नया निजी अर्थ सृजित करता है–पाठ में सोए अर्थ को जगाकर उससे संवाद करता है और कभी–कभार उन अर्थों को खोलता है जो शक्ति–सत्ता की आकांक्षा वालों ने दबा दिये थे।'[5]

इस तरह कविता या निबंध में व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है। दूसरे यह देखना जरूरी है कि अज्ञेय के निबंधों में वैचारिक तनाव की माया इतनी ज्यादा रहती है कि तनाव में झोल नहीं पड़ने पाता। 'अज्ञेय अपनी संपूर्ण मानसिक सत्ता के साथ 'त्रिशंकु' के निबंध हों या अन्य निबंध संग्रहों के निबन्ध, उन्हें अनेक शैलियों में लिखने पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं।'[6] छोटे से छोटे विचार को गंभीर विषय बनाना और हर कोने से विशद् विचार–विश्लेषण–फिर संश्लेषण करना अज्ञेय की निबन्ध कला का अंग है। 'नाना अर्थ सम्बन्धों के वैविध्य–वैचित्र्य ध्वनिगत वक्रताओं की भंगिमाओं से भाषा में अर्थ का ऐसा खेल शुरू होता है कि गतिशील अर्थ की परंपरा खिलखिलाने लगती है।'[7]

प्रत्येक विचार वस्तु, प्रतीक, मिथक, बिम्ब, रूपक, आख्यान, इतिवृत्त पुराण के अनेक प्रकार के विवरणों–वर्णनों–कथनों, उक्तियों पर दृष्टि गड़ाने वाला अज्ञेय का निबंधकार भिन्नता की सनातनता में विश्राम पाता है–यही उसके वैचित्र्यपूर्ण आनन्द का अमृतकलश है जिसे वह अपनी अनुभूति की भट्ठी पर चढ़ाकर, तपाकर पाता है। सामयिक चिन्ताओं–चुनौतियों–समस्याओं, देश और काल की स्थितियों पर अज्ञेय एकाग्र होकर सोचते हैं और उनका 'उड़ चल हारिल' मन का अपराजेय संकल्प अनथक पंखों की चोटों से विचारों के नभ में हलचल मचा देता है। फिर अज्ञेय कथाकार, कवि, अनुवादक, संस्मरणकार, पत्रकार, संयोजक, संपादक अनेक तरह के बहुवचन रहे हैं। अनेक विधाओं में प्रवीण अज्ञेय ने अपने रचना–कर्म, संपादक–कर्म, यायावरी अनुभवों के 'फ्यूजन' से निबंधों में एक नये तरह का रासायनिक घोल प्रस्तुत किया है। अंतःसंघर्ष की अपनी कमाई को अज्ञेय ने जीवन भर निबंध लिखने में लगाया। प्रयोगवाद–प्रगतिवाद, छायावाद–नयी कविता के किसी निबंधकार ने चाहे मुक्तिबोध हों–विजयदेव नारायण साही हों–इतने निबंध नहीं लिखे–जितने अकेले अज्ञेय ने लिखे हैं। यह सच है कि उनके ज्यादातर निबंध कवि–कर्म के आधुनिक संकट की चुनौतियों पर केन्द्रित रहे हैं। अज्ञेय के निबंधों में टी.एस. इलियट के निबंधों की तरह काव्य और आलोचना का ऐसा सम्मिश्रण और सामंजस्य है कि रक्त और त्वचा की तरह एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। अज्ञेय की आलोचना को इलियट की तरह निजी

काव्य–कर्मशाला का उपजात (बाई प्रोडक्ट) या काल–सृजन के संदर्भ में अपने चिन्तन का विस्तार और निखार मानना चाहिए। अज्ञेय अपने साहित्यिक कृतित्व में अपने को मूलतः कवि ही मानते हैं और हर कोण और मोड़ से कवि–कर्म को ही प्राथमिकता देते हैं। 'त्रिशंकु' के सभी निबंध साक्षी हैं कि उन्होंने 'काव्य–सृजन–प्रक्रिया प्रेरणा–प्रयोजन आदि के विषय में जो चिन्तन–मनन किया है उसी से उनकी आलोचना दृष्टि और थियरी की उत्पत्ति हुई है।'[8] हाँ, यह बड़ी बात है कि अज्ञेय की काव्य–कर्मशाला के आलोचना–कर्म में कारयित्री और भावयित्री प्रतिभाएँ परस्पर पूरक रही हैं। फलतः उनके कवि में आलोचक और आलोचक में कवि जुड़े हुए हैं। निबंधों में नये विचारों का परिष्कृत होकर आना इसी प्रक्रिया की उपज है। न अज्ञेय की कविता में उत्तेजना का उच्छवास है न निबंधों में। वही धैर्य–संयम–संतुलन, शब्द की तलाश, शब्द–संस्कार, शब्द का सही प्रयोग उनकी एक क्लासिक मूर्त्ति निर्मित करता है। उनका 'सच्चा' नाम उनके चुप्पा–मौन–मंथन में मनहूस नहीं है जैसा कि हिन्दी के एक नामी आलोचक को दिखाई दिया है। अज्ञेय का सर्जक और अज्ञेय का आलोचक एक–दूसरे से दूरी रखने पर भी अपनी अनन्तता में अभिन्न हैं। 'अज्ञेय ने सर्जक और पाठक दोनों ही दृष्टि से अपने चिन्तन–प्रधान निबंधों की सृष्टि की है। मूल बात यह है कि अज्ञेय के निबंधों का चिन्तनपरक, अनुसंधात्मक पक्ष केवल पाठक के लिए नहीं है–वह सर्जक और पाठक दोनों के लिए है।'[9]

अज्ञेय के चिन्तन की मौलिकता इस बात में है कि टी.एस. इलियट की सिद्धांत–दृष्टि से प्रभावित होने पर भी वे इलियटीय दृष्टि के नकलची नहीं हैं। वे भारतीय दृष्टि से इलियट और पश्चिम को परखते हैं–स्वाधीन दृष्टि से। दृष्टि की इस स्वाधीनता ने ही अज्ञेय को मौलिक चिन्तक के पद से कभी स्खलित नहीं होने दिया है। इसलिए अज्ञेय की सर्जन–चिन्तन दृष्टि पर प्रभाव तो बहुतों का है किन्तु अनुगमन किसी का नहीं है। बार–बार वैयक्तिकता की बात करने पर भी वे निर्वैयक्तिकता के साधारणीकरण के गहरे अर्थों के समर्थक हैं। 'अज्ञेय का कोई भी निबंध–संग्रह हो–उसका उद्देश्य है पाठकों को नये के प्रति जागृत करना, रूचि–परिष्कार करना, जड़ीभूत सौन्दर्याभिरूचियों को तोड़कर नया पाठक समाज तैयार करना ताकि कठिन कवि–कर्म की जटिल संवेदना को वह ग्रहण करने में समर्थ हो सके।'[10] उनकी दृष्टि में अभिनवगुप्त का 'सहृदय' नहीं है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वाला 'साहित्य का सहचर', 'साहित्य का साथी', 'साहित्य का सगोतिया' है। गहरे, बहुत गहरे में अज्ञेय पर जयशंकर प्रसाद और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चिन्तन का बहुत दूर तक प्रभाव है। क्या करें अज्ञेय के इस पक्ष पर बहुत कम सोचा गया जबकि सोचने की अपेक्षा है। नये कवि–कर्म को नयी दृष्टि से देखने की क्षमता,

बौद्धिक–विवेक–वयस्कता का अज्ञेय के यहाँ बहुत आदर है। इसलिए 'वे आलोचना कर्म के नये मानदंडों की तलाश में जूझते–खपते रहते हैं और फार्मूलाबद्ध प्रगतिवादी मानदंडों का विरोध करते हैं।'[11] इस प्रगतिवाद–विरोध के कारण ही हिन्दी के मार्क्सवादी आलोचक अपनी प्रतिबद्धताओं को लुटता–पिटता देखकर अज्ञेय के प्राणों के पीछे पड़े रहे हैं। घाट–घाट का पानी पीने वाले अज्ञेय ने अपने विरोधियों से शक्ति पायी है और कहा है कि मैं वह धनु हूँ जिसे साधने में प्रत्यंचा टूट गयी है। सन् 1943 में 'तारसप्तक' प्रकाशित हो चुका था, अज्ञेय पर चौतरफा प्रहार हो रहे थे और अज्ञेय बिना रूके, बिना झुके 1945 ई. में सरस्वती प्रेस, बनारस से 'त्रिशंकु' निकालते हैं। 'त्रिशंकु' के भीतरी पृष्ठ के साथ है–'संघर्ष–युग में साहित्य'। श्रीपतराय और अज्ञेय में मित्र–संवाद रहा है। दोनों के मित्र–संवाद से भरे अनेक पत्र इसके प्रमाण हैं। 'त्रिशंकु' की भूमिका अज्ञेय की मनोभूमि का सच्चा परिचय देती है–'आलोचना' में नया कम होता है, जितनी कुछ मौलिकता उसमें हो सकती है, इस पुस्तक के निबंधों में उतनी भी नहीं है। कई वर्षों के अध्ययन का जो पहले साध्य होकर भी सुलभ था और अब साधन होकर भी क्रमशः दुर्लभ होता जाता है, 'सहारा लेकर साहित्य के बारे में जो कुछ धारणाएँ बना पाया हूँ और उनके सहारे हिन्दी साहित्य को जैसा समझा हूँ वही बताने का प्रयत्न इन लेखों में किया गया है।'[12] इस कथन की व्यंजना यह है कि साहित्य की अवधारणाओं पर अज्ञेय की दृष्टि रही है। उनके निबंध आधुनिक हिन्दी लेखक, पाठक और आलोचक के काम के सिद्ध होंगे। और नहीं तो इसीलिए कि इनमें प्रस्तुत किये गये सिद्धांतों का प्रतिपादन हिन्दी में प्रायः नहीं किया गया है और न उनके सहारे आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने का कोई प्रयत्न हुआ है। हिन्दी में आलोचना क्रमशः उन्नति कर रही है, पर आलोचना के नाम से निरे 'उच्छवास' से बढ़कर भी हम अभी प्रायः आरव्यात्मक आलोचक तक ही आते हैं। मूल्यांकन के प्रयत्न हमारी आलोचना में नहीं के बराबर है। अर्थात् आलोचना का दायित्व है कि वह कृतियों के पाठ–विमर्श या भाष्य–व्याख्या के साथ मूल्यांकन करे। मूल्यांकन के लिए नयी मूल्य दृष्टि के प्रतिमान चाहिए। पुराने प्रतिमानों से नयी कृतियों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

अज्ञेय को निबंधों को लिखने की प्रेरणा के पीछे नयी दृष्टि से नये प्रतिमानों की अवधारणाओं पर नये सिरे से विचार करना है। 'स्थापित' को 'विस्थापित' करने का अर्थ है–पाठ की नयी पढ़त। इसी संकल्प के साथ अज्ञेय ने अपने युग की सैद्धांतिकी का बदले संदर्भों में नया भाष्य किया है। प्रगतिशीलों ने अपनी 'थियरी' को खूँटों से बाँध दिया और आधुनिकतावादियों ने थियरी पर ध्यान कम दिया। आधुनिकतावादी अमेरिका की 'न्यू क्रिटिसिज्म' की ओर झुकते गये–जिसमें मूल्य दृष्टि का स्थान लगभग

नहीं था। उसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य सामाजिक दायित्व को नकार गया। अज्ञेय इस तरह के आधुनिकतावाद के प्रति जागरूक थे और साहित्य के सामाजिक दायित्व के प्रति वचनबद्ध। इस दृष्टि से अज्ञेय का व्यक्ति स्वातंत्र्य सिद्धांत पश्चिमी ढंग का व्यक्तिवाद नहीं है जिसमें अन्य का स्थान न हो। अज्ञेय के 'मैं' में 'अन्य' अनिवार्यता अन्तर्भुक्त है। हिन्दी की जीवन्त साहित्यिक परंपराओं में 'शिवेत रक्षतये' का आदर रहा है और यह आदर अज्ञेय की दृष्टि में सदैव विद्यमान रहा है।

संदर्भ–सूची :

1. 'अज्ञेय : एक विश्लेषण', वंदना राय, साहित्य सदन, देहरादून, 2007, पृ. 187
2. वही, पृ. 126
3. 'हिन्दी निबंधों का इतिहास', प्रभात कुमार, राजीव प्रकाशन, अलीगढ़, 1990, पृ. 15
4. 'हिन्दी के प्रमुख निबंधकार', प्रज्ञा कथूरिया, सजल बुक सेन्टर, चंडीगढ़, 2002, पृ. 95 से उद्धृत
5. वही
6. 'अज्ञेय–साहित्य : एक विहंगम दृष्टि', विनोद राउत, राजीव प्रकाशन, अलीगढ़, 1995, पृ. 137
7. वही
8. वही
9. वही, पृ. 272
10. 'अज्ञेय : एक अध्ययन', डॉ. नरेन्द्र सिन्हा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 50
11. वही
12. 'त्रिशंकु', (भूमिका से) अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1945, पृ. 2